'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक २६ | वाराणसी, शनिवार, २८ फरवरी, १९५९ | पच्चीस रुपया वार्षिक

गो-सेवकों के साथ

हमीरगढ़ (भीलवाड़ा) ११-२-'५९

गोरक्षा का समग्र दर्शन ग्राम-स्वराज्य में ही संभव

श्री जमनालालजी की पुण्यस्मृति में

हमारे यहाँ श्राद्ध की प्रथा पुराने जमाने से चली आ रही है। इसके प्रति हमारी जनता में बहुत आदर है। लगभग सारी दुनिया में पितरों के प्रति ऐसा ही आदर-भाव रखा जाता है, फिर भी हिन्दुस्तान में भगवान और संतों की पूजा के अलावा पितरों की भी पूजा चलती है। याने अपने पितरों का स्मरण, उनके लिए श्राद्ध और आदर-प्रदर्शन—हमारे यहाँका एक आम रिवाज है। गीता में भी लड़ाई के दोष दिखाते हुए अर्जुन ने कहा है कि अगर इस लड़ाई में कुल के प्रमुख जनों का संहार हो जायगा तो फिर श्राद्ध कौन करेगा ? इस तरह स्पष्ट है कि पूर्वजों के लिए हमारे यहाँ बहुत आदर है। अवश्य ही हम देखते हैं कि धीरे-धीरे वेदों से लेकर आज के संत-वाङ्मय तक धर्म-विचार में बहुत फर्क पड़ा है। वेद में इन्द्र और वरुण आदि देवताओं के नाम आते हैं। उनके स्तोत्रों से वेद भरा पड़ा है। लेकिन आज उन देवताओं का पता तक नहीं, उनकी जगह दूसरे देवों ने ली है। पुराने जमाने में यज्ञ होते थे, आज उनकी जगह नाम-स्मरण, कीर्तन आदि भक्तिमार्ग ने ली है। इस तरह कुल मिलाकर भारत में धर्म-विचार में जितना फर्क हुआ, शायद ही दुनिया के किसी दूसरे देश में हुआ हो। जिन देशों ने धर्म-विचार को ही पटक दिया, उनकी बात अलग है। किन्तु धर्म-विचार कायम रखते हुए जितना भी परिवर्तन भारत ने किया, वह बहुत कम देशों में पाया जाता है। इतना फर्क करते हुए भी पूर्वजों के लिए हमारे यहाँ आदर बना ही हुआ है, यह हमारे देश की एक खूबी है। हर देश में कुछ खूबियाँ तो कुछ खामियाँ होती ही हैं और खामियों को दूर कर खूबियाँ बढ़ानी पड़ती हैं। हमारे देश की यह एक खूबी है।

आज हम जमनालालजी का श्राद्ध-दिवस मना रहे हैं। आज सत्रह साल पूरे हो रहे हैं; फिर भी वह दिन भूल नहीं सकता हूँ। मृत्यु का तो किसीको पता चलता ही नहीं, फिर भी कुछ अन्दाज लग जाता है। जमनालालजी को मृत्यु का अन्दाज मृत्यु के दो-तीन घण्टे पहले तक किसीको नहीं था और वे काम करते ही रहे। उनका अन्तिम कार्य गो-सेवा था, यह तो सभी जानते हैं। लेकिन चंद घंटों में वे चल बसे तो उस दिन हम सब लोगों ने महसूस किया—जो उनके रहते हुए महसूस नहीं किया था कि उनके अभाव में हमारी गाड़ी कहाँ-कहाँ रुकेगी। खैर, उस सारे इतिहास को यहाँ बताना नहीं चाहता, लेकिन वह ऐसा इतिहास है, जिसे हम लोग नहीं भूल सकते, जो उनके साथ रहते और काम करते थे।

जमनालालजी की कुल प्रवृत्ति भूतदया और सेवा की थी। वे मुझे बताते थे कि उनके जीवन में जागृति कैसे आयी ? वर्धा के नजदीक कोई दस मील पर शेलुगोड़े नाम का गाँव है, जहाँ एक सत्पुरुष रहते थे। एक बार उनका भजन सुनने के लिए जमनालालजी गये थे। संत ने कबीर का एक भजन गाया : 'हीरा तो गया तेरा कचड़े में।' इसमें यह प्रबोधन था कि तू सम्पत्ति तो खूब इकट्ठी करना जानता है, उसका लोभ नहीं छूटता। किंतु भगवान ने तुझे जो हीरा दिया था, वह तो कचरे में जा रहा है, उसकी कुछ फिक्र ही नहीं कर रहा है। यह भजन सुनकर जमनालालजी को जागृति हुई कि भगवान के दिये हुए इस हीरे को सँभालना चाहिए, उसका सदुपयोग करना चाहिए। परिणामस्वरूप उन्हें कुल सम्पत्ति के प्रति वैराग्य पैदा हुआ और वे बापू की 'ट्रस्टीशिप' की कल्पना के अनुसार उसका उपयोग करने की हमेशा कोशिश करने लगे।

सम्पत्ति के विषय में उनका जो यह खयाल बना, वह बापू से मिलने के पहले की बात है। पहले वे शिक्षण, समाज-सुधार आदि सामाजिक काम करते रहे। समाज के लिए जो भी सुधार बताये जायँ, उनका अमल निज के जीवन में, घर में होना चाहिए, यह उनका हमेशा आग्रह रहा। बापू के सम्पर्क में आने के बाद तो वे खादी, ग्रामोद्योग आदि जो-जो काम बापू उठाते गये, सभीको आगे बढ़ाने और संरक्षण देने की चिंता करने लगे। फिर राजनैतिक काम वे तो करते ही, कार्यसमिति में भी रहे। आखिर राजस्थान की राजनीति में भी उन्हें पड़ना पड़ा, यह तो राजस्थानवाले अच्छी तरह जानते हैं।

किन्तु उनका अन्तिम काम गो-सेवा रहा। बापू ने जब वह काम सुझाया तो उन्हें बड़ा आनंद हुआ। लेकिन जैसा कि

उनका रिवाज ही था कि कोई निश्चय करने से पूर्व मुझे भी पूछ लेते थे। मेरा और उनका संबंध बहुत गहरा था। खासकर जब धुलिया जेल में हम दोनों छह महीने साथ थे, उस समय जो संबंध आया, वह कुल जिन्दगी में नहीं आया; क्योंकि उस समय निकट संपर्क था। उनकी कोठरी मेरी कोठरी से बिलकुल सटी थी। उसके बाद नागपुर जेल में भी बहुत गहरा और अंतर्बाह्य परिचय हुआ। 'गीता-प्रवचन' सुननेवालों में जमनालालजी भी थे। तभीसे वे हर बात में मेरी सलाह लेते थे। तदनुसार जब बापू ने यह सलाह दी तो वे मेरी भी राय जानना चाहते थे। जब उन्होंने गो-सेवा के बारे में मुझसे पूछा तो मैंने कहा: 'इससे बहुत ही खुशी होती है। बड़ा ही सुंदर काम है।' यह सुनकर उन्हें पूरा संतोष हुआ। सोचने लगे कि ऐसा काम मिला, जो जिन्दगी का अन्तिम काम और सेवा की दृष्टि से श्रेष्ठ काम है। वैसे सेवा में तो श्रेष्ठ-कनिष्ठ भाव नहीं होता, फिर भी गाय की सेवा में एक प्राणी की सेवा के साथ मानव की भी सेवा हो जाती है। इस तरह दुहरी सेवा का लाभ मिलता है। अतएव वे अन्त तक इसीमें लगे थे। जिस दिन वे गये, उस दिन भी इसीकी चर्चा और चिन्ता करते रहे।

उन्होंने अपने लिए एक झोपड़ी बनायी थी। आज झोपड़ी हटाकर उसी जगह मकान बनाया गया, यह ठीक नहीं हुआ; फिर भी वह मकान 'गोपुरी' कहलाता है, इतना ही सन्तोष है। हाँ तो उस समय वे उस झोपड़ी में रहते थे। अपने पास गायें भी रखी थीं और उनकी सेवा भी करते थे। तभीसे वर्धा में गो-सेवा का काम चला।

नये और पुराने जमाने की तुलना ही क्या?

आज जमनालालजी होते तो गो-सेवा के लिए क्या करते, ऐसा सवाल पूछने की जरूरत नहीं। इसका कोई उत्तर नहीं दे सकता, इसलिए कि उनके जमाने में और आज के जमाने में काफी अंतर पड़ गया है। अब स्वराज्य प्राप्त हुआ, यह अंतर तो है ही, किंतु वह मुख्य अंतर नहीं। उसके अलावा विज्ञान के कारण आज दुनिया के विचार इतने बदल गये हैं कि जो प्रेरणा पचास साल पहले लोगों को थी, वह आज नहीं है। इतना ही नहीं, उससे बिलकुल भिन्न प्रेरणाएँ आज समाज में आ गयी हैं। जैसे-जैसे विज्ञान बढ़ता जायगा, आप देखेंगे कि पुराने भी लोग बहुत जल्दी पिछड़े साबित होंगे, सिर्फ पुराने ही नहीं। सारांश, एक तो स्वराज्य आने पर सरकार के जरिये ही रचनात्मक काम होते हैं, इसलिए परिणाम में फर्क होते हैं। दूसरा, विज्ञान के कारण विचारों में बदल हो गया और तीसरी बात यह हुई कि आज जन-संख्या पहले से काफी बढ़ गयी है। ४० साल पहले भारत की जन-संख्या ३३ करोड़ थी। तैंतीस करोड़ देवता कहकर कविगण उसपर कविता भी लिखते थे। आज उसकी जगह पाकिस्तान और हिंदुस्तान दोनों मिलाकर ५० करोड़ के करीब हो गयी। यही रफ्तार रही तो आगे शायद इससे भी अधिक जन-संख्या हो सकती है। फिर तो आप यहाँ बहुत भयानक दृश्य देखेंगे—जमीन बहुत कम पड़ेगी और जन-संख्या बहुत ज्यादा रहेगी। यह सारा विज्ञान के कारण हो रहा है।

हम बचेंगे, तभी गाय बचेगी

विज्ञान के कारण एक बहुत बड़ी मुसीबत पैदा हुई है कि बच्चे मरते नहीं। पहले साधारणतः बच्चे ३-४ साल में मर जाते थे। तीन साल का 'बच्चा' हो गया तो समझना चाहिए कि अब वह बचा। 'बच्चा' का अर्थ ही मैं यह करता हूँ कि 'बच गया सो बच्चा।' विज्ञान के कारण लोगों को बच्चों के पालन-पोषण का अब काफी ज्ञान हो गया है, इसलिए बच्चे जल्दी नहीं मरते और उसीसे जनसंख्या बढ़ती जा रही है। किन्तु जैसे विज्ञान के कारण बच्चे जल्दी न मरने का आशीर्वाद हमें मिला, वैसे ही ब्रह्मचर्यादि की प्रेरणा का आशीर्वाद भी मिलना चाहिए। याने गृहस्थाश्रम की आज की अवधि कम होनी चाहिए—जरा देरी से शादी हो और गृहस्थाश्रम या विषय-वासनाओं से जल्दी निवृत्त हों। अलावा इसके जनता को संयम का शिक्षण मिले, जो विज्ञान के जमाने में बहुत ही संभव है। विज्ञान मनुष्य को यही सिखाता है कि हमारी हर क्रिया सहेतुक होनी चाहिए। याने हम जो भी काम करें, वह अत्यधिक आवेश, उत्साह या जोश में न करें, सोच-विचारकर और उसके परिणाम ध्यान में रखकर करें। अगर समाज में यह विचार फैलता है और तदनुसार शिक्षण तथा साहित्य में परिवर्तन किया जाता है, तभी हमारा बचाव है और हमारे साथ गाय का तभी बचाव है। अन्यथा गाय का बचाव कतई नहीं, यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए। इस दृष्टि से मैं सोचता हूँ तो लगता है कि मानवता और गाय के बचाव के खयाल से इसके आगे संयम का महत्त्व बहुत बढ़नेवाला है।

बापू का वेदवाक्य : 'गो-सेवक उत्तम ब्रह्मचर्य रखें'

यही कारण है कि बापू के मुँह से एक वाक्य निकला था, जो असल में वेदवाक्य ही था। उन्होंने कहा कि 'गो-सेवक को उत्तम ब्रह्मचर्य-पालन करना चाहिए'। बलवंत सिंहजी जानते हैं कि बापू ने कई बार यह विचार रखा है कि यदि हमें गो-सेवा करनी है तो वह ब्रह्मचर्य के सिवा नहीं कर सकेंगे। वे यह बात इस खयाल से कहते थे कि आज दुनिया में गाय के विरुद्ध प्रवाह बह रहा है। हम उसे बचाने, उसकी रक्षा करने का विचार करते हैं तो हममें खूब पवित्रता चाहिए। लेकिन उनकी इस सूझ में दूसरा भी एक सूक्ष्म अर्थ यह था कि अगर हम ब्रह्मचर्य न रखेंगे तो आगे जाकर गाय और मनुष्य में विरोध उपस्थित होगा और उस हालत में गो-रक्षण सर्वथा असंभव हो जायगा। गाय की रक्षा करनेवाले हम ही उसे खत्म कर सकते हैं। अवश्य ही मानव अन्य प्राणियों से अधिक विकसित है, फिर भी वह अपने मानव तक ही सीमित रहता है और आज तो वह मानव तक भी सीमित नहीं है। पाकिस्तान को हिन्दुस्तान दुश्मन मालूम होता है और हिन्दुस्तान को पाकिस्तान। मानव में ही एक-दूसरे के लिए आत्म-दर्शन नहीं है। ऐसी स्थिति में गाय की बिसात ही क्या? इसलिए हमें संयम सीखना होगा। उसके बिना गो-रक्षा सर्वथा असंभव है।

मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि आज की हालत में गाय के साथ हमारा जीवन जुड़ा है; इसलिए गाय की उन्नति से हमारी उन्नति और हमारी उन्नति से गाय की उन्नति जुड़ी हुई है, दोनों की उन्नति मिली-जुली है। इसलिए मैं मानता हूँ कि यदि उचित रूप से हम गाय की ओर देखें, अपने कुटुंब में उसका समावेश करें तो हमें कई काम करने होंगे। रही औलाद पैदा न हो, यह देखना होगा। अच्छी औलाद पैदा होने का तरीका ढूँढ़ना होगा, उसका शास्त्र सीखना पड़ेगा और गो-रक्षा के साथ खेती, ग्रामोद्योग और नयी तालीम को भी जोड़ना होगा।

खेती और गो-रक्षा अलग-अलग नहीं रह सकते

हम खेती और गो-रक्षा को अलग नहीं रख सकते। कई लोग कहते हैं कि जहाँ गाय चरती है, जिसे 'बीड़' कहते हैं, वह हमेशा के लिए गायों के वास्ते रहे। किन्तु यह ठीक नहीं।

कुल-के-कुल चरागाहों पर हल चलने चाहिए और वहाँ खेती होनी चाहिए। जहाँ पहले खेती हुई हो, उसे चरागाह बना देना चाहिए। जहाँ गाय-बकरी आदि का मल-मूत्र विसर्जन हुआ हो, वहाँ ज्यादा फसल पैदा होगी। जहाँ वर्षों से फसल पैदा हो रही हो, उस जमीन को दो-चार साल गायों के लिए रखा जाय और वहाँ घास उगायी जाय। आज तो गाय इधर-उधर खा लेती है, ऐसा नहीं होना चाहिए। चप्पा-चप्पा, इंच-इंच जमीन पर इस तरह योजनापूर्वक काम करना होगा कि यह जमीन गायों के लिए और यह जमीन मनुष्यों के लिए है। जो आज मनुष्यों के लिए है, वह कल गायों के लिए हो। यह सारा काम योजना के साथ करना होगा। इस तरह स्पष्ट है कि खेती को छोड़कर गोरक्षा का विचार चल ही नहीं सकता।

ग्रामोद्योग और नयी तालीम भी जरूरी

फिर खेती और गो-रक्षा ग्रामोद्योग पर निर्भर है। ग्रामोद्योग न हो तो सिर्फ जमीन पर हम टिक नहीं सकते; क्योंकि जमीन कम है, इसलिए पूर्ति में ग्रामोद्योग चाहिए। पहले तो गाय को क्या खिलायें, यही सवाल आयेगा। गाँव के कपड़े गाँव में ही बनेंगे तो बिनौला काम में आयेगा, गाँव का तेल गाँव में बनेगा तो खली काम में आयेगी, गाँव का अनाज गाँव में ही कूटा-बनाया जाय तो भूसी गाँव में रहेगी। इस तरह खेती और ग्रामोद्योगों को गोरक्षा के साथ जोड़ना होगा।

फिर भी यदि आज की तालीम नहीं बदलेगी तो आपका यह सब कुछ भी न चलेगा। आज की तालीम में काम करना नहीं, काम से नफरत करना ही सिखाया जाता है। शारीरिक काम की जरूरत ही नहीं, दिमागी काम करके ज्यादा से ज्यादा पैसा प्राप्त करने की हवस बढ़ायी जाती है। क्या ऐसी तालीम हाथ में गोबर उठाना सिखा सकती है? भगवान कृष्ण गोबर उठाते थे। मेरा खयाल है कि अगर यही तालीम चलती रही तो आगे जाकर लोग ऐसी कहानियाँ पढ़ेंगे ही नहीं। आजकल के लड़के-लड़कियाँ बचपन में न मालूम कैसा-कैसा साहित्य पढ़ते हैं और दिमाग में पश्चिम के खयाल रखते हैं। उनके देश में उनके विचार प्रतिकूल नहीं, पर यहाँ प्रतिकूल अवश्य हैं। वहाँ यंत्र चल सकेगा, पर यहाँ नहीं। इस तरह स्पष्ट है कि आज की तालीम से गो-सेवा नहीं हो सकती, इसलिए यह तालीम बदलनी ही होगी।

मालकियत के रहते कुछ भी सम्भव नहीं

इसलिए खेती, गोरक्षा, तालीम, ग्रामोद्योग और ब्रह्मचर्यादि आध्यात्मिक जीवन—यह सब मिलकर एक वस्तु हो जाती है। कुल मिलाकर एक-दूसरे के साथ मिली-जुली एक चीज बनती है। किन्तु यह कैसे हो? समूचा जीवन इस प्रकार एक बने, इसका आधार क्या है? जब मैं यह सोचता हूँ तो मुझे यही एक आधार दीखता है कि जमीन की मालकियत की कल्पना टूटनी चाहिए। जब तक यह नहीं टूटती, तब तक यह कभी नहीं हो सकता। मालकियत की कल्पना बहुत पुरानी नहीं, बीच के जमाने की है। अतः मुझे तो यह निश्चित लगता है कि जब तक मालकियत नहीं मिटती, तब तक यह नहीं होगा।

कल ही मैंने अखबार में पढ़ा कि मध्य प्रदेश में ३७ मन गेहूँ और ४० मन दाल बिक रही है। इससे भी ज्यादा भाव बढ़ सकता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य क्या खायेगा? इसका मतलब यह है कि गाँववालों को गाँव के लिए जितना अनाज चाहिए, वह कुल-का-कुल गाँव में पैदा हो। दो साल के लिए अनाज गाँव में रहे, तभी हिन्दुस्तान बचेगा। इसके लिए गाँव की पूरी योजना गाँववालों को करनी चाहिए, जमीन की मालकियत मिटनी चाहिए। इसके बिना व्यक्तिगत तरीके से गोरक्षा नहीं होगी, यह भी समझ लेना चाहिए। २५-३० साल से मैं यही सोचता आ रहा हूँ। सारे गाँववालों को भी सोचना चाहिए कि गाँव के लिए कितनी गायें हों। इस तरह सारे गाँव की योजना होनी चाहिए। अगर दूध कम हो तो दूसरी जगह न भेजा जाय। ग्राम-सेवा-संघ केवल भीलवाड़े में होने से नहीं चलेगा। इस प्रकार के संघ हर गाँव में होने चाहिए, जिले या तालुके में नहीं। गाँव में गाय-बैल कितने हों, इसका निर्णय करना चाहिए। अच्छी नस्ल गाँव में पैदा करनी चाहिए। गायों का पालन सामूहिक रीति से हो, फिर भी व्यक्तिगत सेवा का मौका अवश्य मिलना चाहिए। जब सामूहिक पालन और व्यक्तिगत सेवा होगी, तभी ये सारे सवाल हल होंगे। इस तरह मैंने १—खेती, २—ग्रामोद्योग, ३—गो-सेवा, ४-नयी तालीम और ५-ब्रह्मचर्यादि का आध्यात्मिक जीवन—यह पंचविध कार्यक्रम दिखाया। उसका आधार जमीन की मालकियत मिटाना, ग्राम-स्वराज्य की योजना करना ही हो सकता है, दूसरा कोई भी नहीं।

रविशंकर महाराज तीन-चार महीने से मेरे साथ हैं। हम लोगों की कई दफा चर्चा होती है। वे कहते थे कि अब ध्यान में आता है कि हिन्दुस्तान तभी बचेगा, जब हरएक गाँव में अपना ग्राम-स्वराज्य स्थापित होगा। आज की सारी समस्याओं को हल करने का अगर कोई तरीका है तो वह ग्राम-स्वराज्य ही है—ग्रामदान की बुनियाद पर ग्राम-स्वराज्य। आप लोग गाय के लिए चिन्तित हैं तो आपको ग्राम-स्वराज्य की ओर ध्यान देना चाहिए। गाँव-गाँव में गायें तभी रहेंगी, जब ग्राम-स्वराज्य की स्थापना होगी।

जीवन में गाय का स्थान पहचानें

गत आठ सालों में मैंने बहुत प्रेम पाया तो कुछ मित्रों से गुस्सा भी मिला। वे कहते हैं कि तुमने क्या किया? खादी की ओर ध्यान देना चाहिए था, पर वह नहीं दिया। गो-सेवा का तो नाम ही नहीं लेते। लेकिन वे जानते हैं कि मैं गाय का दूध अधिक पीता हूँ। दूध पीने में क्या गाय की कम सेवा होती है? यह तो मैं विनोद में कह रहा हूँ। वास्तव में आपसे कहना चाहता हूँ कि मैं गो-सेवा को एक क्षण के लिए भी भूला नहीं हूँ। किन्तु वह तभी हो सकेगी, जब कि ग्रामदान हो। इसी बुनियाद पर गाय टिक सकती है। अन्य किसी बुनियाद पर वह बच नहीं सकेगी, सिर्फ नाम लेकर काम नहीं चलेगा। मानव-जीवन में उसका एक स्थान है, उसे सुरक्षित करना होगा। केन्द्रस्थान में गाय रहेगी, जैसे चरखा है। फिर गायों में क्या सुधार हों, यह सोचना होगा। क्या गाय भैंस बन जाय? हिंदुस्तान के लोग चाहते हैं कि बैल बन जाय बाप और भैंस बने माँ तो देश के लिए बड़ा अच्छा हो। बैलों के बिना खेती नहीं हो सकती और दूध के वास्ते भैंस चाहिए। किंतु यह ईश्वर को मंजूर नहीं है। भगवान कहता है कि यदि बाप बैल चाहते हो तो माता गाय को कबूल करना ही पड़ेगा और अगर भैंस माँ चाहते हो तो भैंसे को बाप कबूल करना होगा—इसलिए विवश होकर देश की योजना में सुनिश्चित गायों और बैलों के स्थान उन्हें देने ही होंगे।

गोदुग्ध-पान नित्य-धर्म बने

बीच में 'गो-सेवक-संघ' वालों ने व्रत लिया था कि गाय

का ही घी-दूध लेंगे। परिणाम-स्वरूप लोगों का घी-दूध खाना ही बन्द हो गया, क्योंकि गाय का घी-दूध मिल ही नहीं पाता था। ऐसा नहीं होना चाहिए। गाय का दूध-घी रोज खाना ही है, ऐसा व्रत होना चाहिए, जैसा कि भगवान कृष्ण का व्रत था। बिना दूध-घी खाये सेवा कैसे होगी ? इसलिए गोव्रत का अर्थ दूध-घी छोड़ देना कभी न हो। जब तक वैसा आधार नहीं मिलता, तब तक थोड़ा-सा भी दूध-सेवन करना धर्म माना जाय। जैसे, ब्राह्मण को किसी दिन सन्ध्या न करने पर धर्म-कार्य भूल जाने जैसा लगता है वैसे ही जिस दिन पेट में गाय का दूध न जाय, उस दिन यही लगना चाहिए कि आज हम धर्म-कार्य भूल गये। अगर आप यह समझ लें तो गाय का स्थान आपके ध्यान में आ जायगा।

समग्रता की उपासना से ही सच्चा लाभ

मैं आशा करता हूँ कि आप लोग जीवन का एक-एक टुकड़ा लेकर काम नहीं करेंगे। एक टुकड़ा खादी का, एक ग्रामोद्योग का, एक तालीम का, इस तरह टुकड़े-टुकड़े हाथ में लेने पर कुछ भी काम नहीं होगा। गांधीजी ने जिस समग्रता की बात की थी, वह आज भी नहीं हो पायी है। हम उनकी वह बात नहीं उठा सके, लेकिन मिलवालों ने उठा ली। उन लोगों ने जितना गन्ना चाहिए, उतना अपने खेत में पैदा कर ही लिया, उससे शक्कर बनवायी और बाकी के खेत में अनाज भी पैदा किया तथा स्पिरिट भी बनने लगा। फलस्वरूप वे बड़े-बड़े मालिक बन गये। अब कांग्रेस ने जमीन की सीमा निर्धारित करना तय कर लिया है। इससे ज्यादा जमीन कोई नहीं रख सकता। किंतु यह कानून हजारों एकड़ के मालिक इन फार्मवालों पर लागू नहीं होगा। उनका अपना ही खेत, अपना ही अनाज, अपना ही गन्ना, अपने ही मजदूर, अपने ही यंत्र और अपनी ही शक्कर, सब कुछ अपना ही अपना होता है ! इस तरह वे कुल मिलाकर एक समग्र योजना करते हैं। किंतु हमारे ध्यान में बापू की वह बात नहीं आयी और हम आज भी टुकड़ों की ही उपासना करते हैं। मूर्तिपूजा में एक बड़ी बात समग्ररूप की उपासना है, टुकड़ों की नहीं। अगर मूर्ति का एक भी अवयव कट जाय तो वह पूजा के योग्य नहीं रहती। परिपूर्ण मूर्ति ही पूजा-योग्य मानी जाती है। इसी तरह गो-सेवकों को भी इस दृष्टि से काम करना चाहिए, जिससे जमीन की मालकियत मिटने और कुल-का-कुल काम ग्राम-स्वराज्य के लिए होने की प्रेरणा मिले। इसीके आधार पर ग्राम-स्वराज्य का काम पनपेगा। ● ● ●

विकास-अधिकारियों के साथ

सतलासणा (महेसाणा) ५-१-'५९

सरकारी तथा गैर-सरकारी सेवक मिलकर काम करें

शान्ति-सैनिक की कल्पना ऐसी है, जिसका पूरा संबंध लोगों की सेवा से है। याने इसमें मानव कृष्णार्पण हो जाता है। इसके काम में ध्यान और चिन्तन स्वाभाविक रूप में आ ही जाता है। यह एक भक्त-समाज बनाने की कल्पना है। इसका लक्ष्य है कि सारे भारत में ऐसे लोगों का एक समाज बनाया जाय, जो निरन्तर लोगों के लिए ही सोचे और उन्हें मदद देने में ही अपने लौकिक और पारमार्थिक सभी कामों की कृतकृत्यता माने। ऐसा व्यक्ति पाँच हजार लोगों पर एक होगा। इसका हर घर के साथ, घर के हर बालक के साथ परिचय होगा, जिससे हरएक को विश्वास होगा कि यह हमारा ही व्यक्ति है। लोगों की सेवा में यह स्वयं भाग ले। रात को जागना हो तो जागे। याने शारीरिक दुःख में सेवा-भाव से मदद दे और घर-घर विचार पहुँचाये। लोगों के पास साहित्य पहुचाये और उसे पढ़कर सुनाये। यदि लोगों की श्रद्धा बैठती हो तो मानसिक सवालों का जवाब देकर मानसिक समाधान भी कराये। इस तरह वह शारीरिक और मानसिक, दोनों प्रकार के दुःखों में सान्त्वना दे। लोगों को भूदान और ग्रामदान का विचार समझाये। जमीन मिले तो उसका वितरण कर दे। ग्रामदान मिले तो उसमें उचित सलाह दे। इस तरह वह आर्थिक और सामाजिक काम करे। गृह-परिचय प्राप्त करे, अध्ययन करे और दो-तीन घंटे शारीरिक एवं उत्पादक श्रम करे। इस तरह देखें तो यह सारा कार्यक्रम भक्ति, सेवा, ज्ञान-प्राप्ति, ज्ञान-दान और शरीर-श्रम का ही कार्यक्रम सिद्ध होता है।

यह तो शान्ति-सैनिक का दैनिक कार्यक्रम हुआ। फिर अवसर-विशेष पर, जब अशान्ति खड़ी हो जाय तो वह जान को जोखिम में डालकर शान्ति-स्थापना का प्रयत्न करे। उसपर यह भी जिम्मेदारी है कि उसके क्षेत्र में किसी तरह की अशान्ति न हो। फिर भी यदि किसी कारण वह हो जाय तो उसे शान्ति-स्थापना का यत्न करना चाहिए और उसके लिए खप जाना पड़े तो खप भी जाय। यदि दूसरे क्षेत्र से भी शान्ति-स्थापनार्थ बुलाया जाय तो वह उसके लिए भी तैयार रहे।

सरकारी कर्मचारी और शान्ति-सैनिक

अवश्य ही सरकारी या गैरसरकारी कर्मचारी शान्ति-सैनिक नहीं हो सकते, फिर भी वे शान्ति का काम सर्वथा कर ही सकते हैं, मन से शान्ति का काम कर ही सकते हैं। इसके लिए सरकार की ओर से या मेरी ओर से याने सर्वोदय का काम करनेवालों की ओर से कोई विरोध नहीं है। मैं तो यही अपेक्षा रखता हूँ कि सभी सरकारी कर्मचारी शान्ति-सैनिक हैं। इसमें नाम लिखाना महत्त्व नहीं रखता, काम करने का महत्त्व है। नाम लिखाये बिना काम करनेवाले सरकारी सेवक, कम्यूनिटी प्रोजेक्ट के लोग या अन्य लोग भी हो सकते हैं। ये लोग अपने को शान्ति-सैनिक मानकर काम करें, यही मैं चाहता हूँ।

ऐसे लोगों को मैं 'सेवक' ही कहना चाहता हूँ, 'नौकर' नहीं। यदि ये नौकर हों तो शान्ति-सैनिक भी नौकर कहा जायगा। इन सरकारी सेवकों के निर्वाह की योजना सरकार कर द्वारा परम्परा से करती है, सीधी नहीं, जब कि हमारे सेवकों की योजना सीधे जनता की ओर से होती है। इस तरह दोनों मिलकर अच्छा काम कर सकते हैं। कई जगहों पर दोनों ने मिलकर अच्छा काम किया भी है।

सरकारी नौकरों को बहुत मोटी तनख्वाह नहीं मिलती। फिर भी बन सके तो उन्हें छठा हिस्सा अवश्य देना चाहिए। इससे सभीको वे सेवक मालूम पड़ेंगे। यदि ये छठा हिस्सा दें तो जनता भी इन्हें सेवक समझेगी। सम्पत्ति-दान, ग्रामदान, भूदान में अपनी जबान खाली न जाय, सत्ता का दबाव न पड़े, इसलिए अपनी कमाई का एक हिस्सा देना चाहिए। ये उसे सन्तोष से दें और नियमित रूप से दें। एक जीवन-निष्ठा के रूप में दें। अगर वे इतना ही करें तो प्रेम का आविर्भाव होगा और

शान्ति-सैनिकों के जैसा ही काम हो सकेगा। इससे प्रेम-शक्ति और करुणा-शक्ति जाग उठेगी और काम शान्ति-सैनिकों से कम न होगा। तब इन्हें जनता से प्रेम मिलेगा और सरकार भी सम्मान करेगी। इस तरह दोनों बातें हाथ लग सकेंगी।

वास्तव में ऐसा सेवक बहुत ही दुर्लभ है, जिसे सरकार और जनता दोनों की मान्यता प्राप्त हो। प्रायः सरकारी नौकर होने पर आदमी ईर्ष्या और द्वेष का पात्र बनता है। लोगों में उसके प्रति अरुचि-सी हो जाती है। इसके विपरीत यदि वह लोगों का हित करनेवाला होता है तो सरकार की ओर से अस्वीकार्य हो जाता है। इस तरह स्पष्ट है कि ऐसा सेवक सचमुच बड़ा दुर्लभ है, जो सरकार और जनता, दोनों का प्रीतिपात्र हो। लेकिन आप लोग ऐसे बन सकते हैं। इसके लिए आपको वह सारा पथ्य पालना होगा, जो शान्ति-सैनिक के लिए बताया गया है। सरकार का भी पथ्य होता है। सरकार चाहती है कि हमारा सेवक किसी भी दल का न हो। उसे तो सर्वथा निष्पक्ष होना चाहिए। जैसे राष्ट्रपति, स्पीकर (संसद का अध्यक्ष) और न्यायाधीश दलातीत होते हैं, वैसे ही सभी कार्यकर्ता भी दलातीत रहें, यही सरकार चाहती है। इसलिए सर्वोदयवाले दलातीत रहें और आप भी। जब आप दोनों दलातीत रहेंगे तो दोनों मिल सकेंगे, इस तरह सरकार के अधिकारी और सेवक मिलकर बहुत अच्छा काम कर सकते हैं। ग्रामदान प्राप्त करने का काम सेवकों का है! आपका काम है, उसके लिए वातावरण तैयार करना, विचार पहुँचाना। साहित्य का काम तो आप लोग बहुत अच्छी तरह कर सकते हैं। जब गाँवों में जायँ तो साथ में साहित्य लेते जायँ। जैसे वे सेवक समझाते हैं, वैसे ही आप भी लोगों को समझा सकते हैं। किन्तु यह सारा तभी हो सकता है, जब कि आप दलातीत हों।

सरकारी नौकरों को दलातीत होना चाहिए, यह सोलहों आने सच है। यह सच है कि दलातीत होने पर हमारे सेवक कुछ लोगों के याने दलवालों के लिए अप्रिय हुए हैं, फिर भी जनसाधारण के लिए प्रिय ही हुए हैं। आप लोगों को सावधान रहना चाहिए कि कभी भी किसी भी दल की ओर मन लुढ़क न जाय। आप लोगों को दुःखी और गरीब जनता की सेवा करनी है, अतः उसके अनुरूप ही बनना चाहिए।

ग्राम्य-व्यवस्था बदलने का अमोघ उपाय

आज जो ग्राम-पंचायतें चलती हैं, उनमें विशिष्ट वर्ग और विशिष्ट कौमों का ही बोलबाला रहता है। जिसे वास्तव में मदद चाहिए, उसे वह मिल ही नहीं पाती। इसी कारण झगड़े-टंटे भी हुआ करते हैं। हमारे सेवक और आप लोग दोनों मिलकर गाँव-गाँव के लोगों को समझायें कि ग्रामदान में शामिल हों। उससे दूसरी नयी ग्राम-पंचायत बनेगी। याने २१ साल के ऊपर के हर ग्रामीण का उसमें प्रतिनिधित्व रहेगा। वही गाँव की मालिक होगी, गाँव की सारी व्यवस्था वही सँभालेगी। गाँव के किसी भी काम के लिए उसकी ओर से सर्वसम्मति से एक समिति चुनी जायगी। जिस काम के लिए वह चुनी जायगी, उस काम का प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से पास होगा। ग्रामसभा मुख्य होगी और ग्राम-समिति सेवक-समिति बनेगी। इस तरह ग्रामदान के काम की नयी योजना होगी और उसमें आज के दोष न आ पायेंगे। इसके लिए ग्रामदान के सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं। ग्राम में सज्जनता तो है, पर उसे प्रकाश में लाने की कोशिश करनी है और वह ग्रामदान ही कर सकता है। ग्रामदान आज के वातावरण को सुधारने का अचूक उपाय है।

इसी तरह सर्वोदय-पात्र की भी एक ऐसी ही सुन्दर योजना है, जिसके सफल होने पर यह सारा काम बन सकता है। यह कोई साधारण कल्पना नहीं है। माता बालक के हाथों नित्य पात्र में अनाज डलवाये और वह अनाज एकत्र कर पैसे के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय। शान्तिसेना के लिए पुस्तकों के निमित्त, सेवकों की यात्रा के लिए या शान्ति-सैनिकों के अन्य कामों के लिए उसका उपयोग किया जाय। शान्ति-सैनिक भूदान, ग्रामदान और नित्य-सेवा का काम करें और समय आने पर जान जोखिम में डालकर अशान्त वातावरण में शान्ति-स्थापनार्थ कूच कर दें। यह सारा काम आरंभ से अन्त तक सुव्यवस्थित रीति से करना चाहिए। भक्ति, सातत्ययोग और कुशलता के साथ यह किया जाय। यदि यह सब सुन्दरता के साथ हो तो कबीर के शब्दों में 'एकै साधे, सब सधे' होगा—इसी एक काम से सब कुछ हो जायगा।

आप सभी सर्वोदय-पात्र रख सकते हैं। उसमें किसीको कोई आपत्ति न होगी। इसी तरह सर्वोदय-विचार भी लोगों को समझा सकते हैं। उसके लिए अलग समय निकालने की जरूरत नहीं। खाते-पीते रहें, क्लब में जायँ—जहाँ जायँ, वहीं समझा सकते हैं। सूर्यनारायण जहाँ जाता है, अपनी किरणें साथ लेता जाता है। इसी तरह सेवकों के पास भी सदैव अपने विचार रहने चाहिए। विवाह में जायँ या श्मशान में, वे विचारों से युक्त तो रहने ही चाहिए। इस तरह मैत्री के संबंध जहाँ-जहाँ तक पहुँचे हों, वहाँ-वहाँ तक विचार भी पहुँचाने चाहिए। ●●●

क्षत्रिय-सम्मेलन में

कोवा (अहमदाबाद) २२-१२-'५८

शान्ति-सेना ही विश्वयुद्ध रोकने में समर्थ

१. प्रश्न: देश में क्षत्रियत्व बनाये रखने के लिए क्या किया जाय?

उत्तर: क्षत्रियों का कर्तव्य है कि लोगों की रक्षा के लिए जान जोखिम में डालकर भी तैयार रहें। आप लोग पुराने जमाने में शस्त्रों से काम लेते थे, लेकिन इस जमाने में ये शस्त्र सर्वथा व्यर्थ हो गये हैं। आज ऊपर से एक बम छोड़ते ही एक साथ २५-३० हजार लोग मरते और २५-३० हजार घायल हो जाते हैं। फिर उसके सामने इन पुराने शस्त्रों का मूल्य ही क्या रहा? जब हम इन बमों से भी शक्तिशाली शस्त्र बनायें, तभी काम चल सकता है। लेकिन वह काम तो क्षत्रिय नहीं, वैज्ञानिक कर रहे हैं।

पूछा जा सकता है कि क्या इससे क्षत्रियों का क्षत्रियत्व मिट गया? वास्तव में क्षत्रिय का अर्थ यह नहीं कि शस्त्रों से ही रक्षा की जाय। चूहे के लिए बिल्ली के दाँत बहुत ही तेज होते हैं, पर कुत्ते को देख वह भाग निकलती है। शेर के नख हिरन के लिए बड़े ही कठोर होते हैं, पर बन्दूक को देख वह भी दुम दबाकर भागता है। इस तरह दुर्बलों के सामने बल दिखाने के लिए दाँत, नख या शस्त्रों पर आधार रखा

जाय तो वह कभी भी क्षत्रियत्व नहीं कहा जा सकता । पुराने जमाने में लोगों के पास शस्त्र नहीं थे और क्षत्रियों के पास थे । अतएव वे लोगों की रक्षा के लिए लड़ने को तैयार रहते थे । फिर भी इसमें मुख्य वस्तु जान खतरे में डालकर भी रक्षार्थ सन्नद्ध रहना ही कहा जायगा । इसीका नाम क्षत्रियत्व है । किंतु गांधीजी ने हमें एक ऐसा शस्त्र बताया, जिसके सामने ये सभी बड़े-बड़े शस्त्र व्यर्थ हो जाते हैं । वह शस्त्र है, आत्मबल । हम आत्मबल के आधार पर काम करेंगे, तभी क्षत्रियत्व बना रह सकता है । अतः एकमात्र आत्मबल ही आज के क्षत्रियों का बल होना चाहिए ।

अनासक्तिपूर्वक सेवा करें

गीता में भगवान ने अर्जुन से कहा है कि मैं तुझे वह योग बता रहा हूँ, जिसे पुराने जमाने में सूर्यनारायण ने मनु को बताया था और मनु ने इक्ष्वाकु को तथा इक्ष्वाकु ने राजर्षि को सिखलाया । इस तरह स्पष्ट है कि योग का ज्ञान क्षत्रियों को रहा । उन्होंने अनासक्तिपूर्व लोगों की सेवा कर और शान्त रहकर निष्काम कर्म करने की योगसिद्धि प्राप्त कर ली थी । व्यक्तिगत रूप में यह विद्या भले ही औरों के पास रही हो, फिर भी समष्टि रूप में यह क्षत्रियों के ही पास थी, ब्राह्मण या और किसीके पास नहीं । भगवान ने भी क्षत्रियों को यह विद्या इसीलिए सिखलायी कि यह व्यक्तिगत न रहेगी, सर्वत्र फैल जायगी । कारण क्षत्रिय सबकी रक्षा करते, सबकी सेवा में जुट जाते थे । भगवान के इस उद्देश्य पर ध्यान देते हुए हमें अनासक्तिपूर्वक लोगों की सेवा और रक्षा के लिए प्राणों को संकट में डालकर भी तैयार रहना चाहिए, तभी क्षात्र की रक्षा हो सकती है, और किसी प्रकार नहीं ।

मान लीजिये कि क्षत्रिय आज शस्त्र रखने लग जायँ तो अधिक-से-अधिक तलवार या बन्दूक ही रखेंगे । लेकिन वह तो गरीब को मारने के ही काम आयेगी; ऊपर से बम बरसानेवालों पर उसकी एक न चलेगी, जब कि क्षत्रिय का यह धर्म है कि 'दुर्बलों को कभी न सताये, उनके साथ अन्याय करनेवाले का मुकाबला करे और उसका एकमात्र साधन आत्मबल हो' ।

शान्ति-सेना क्षत्रियत्व की रक्षा का ही धंधा

आज दुनिया में क्षत्रियत्व की अत्यावश्यकता है । इसीलिए मैंने शान्ति-सेना की योजना चलायी है । शान्ति-सैनिक होने का यह अर्थ नहीं कि जान देने पर उतारू हो जायँ । मौका आने पर वह भी करना पड़ता है, लेकिन और समय में हमेशा जनता की सेवा ही करनी है । यदि लोग जान जायँ कि यह हमारा सेवक है तो उपद्रव के समय उसकी आँखें ही काम कर जाती हैं । सेवक वहाँ जाकर खड़ा हो जाय तो लोगों को तत्काल ध्यान में आ जायगी कि 'अरे! हम यह कैसी बेवकूफी कर रहे हैं ।' इस तरह उपकार करनेवाले सेवक के शब्दों और आँखों से ही जनता सँभल सकती है । फिर यदि वह सारी अक्ल ही खो बैठे तो उस सेवक को मार भी सकती है । किन्तु उस समय उसे यही कहकर कि 'भाई! मुझे मार लो, पर दूसरों को न मारो', छाती खोल निर्भय हो खड़ा हो जाना चाहिए । यदि इस तरह के सेवक तैयार हो जायँ तो आज मुझे उनकी सख्त जरूरत है ।

इस तरह मैंने देश में क्षत्रियत्व बनाये रखने का यह एक धंधा ही शुरू कर दिया है । इसमें मैं नये क्षत्रियों की भर्ती कर रहा हूँ । फिर पुराना क्षत्रिय-वर्ग, जो तैयार है, इस काम में क्यों न आये ? अतः गाँव-गाँव सभी क्षत्रिय तैयार हो जायँ और लोगों को स्वामित्व-विसर्जन की बात समझायें तथा घर-घर सर्वोदय-पात्र की स्थापना करायें । इस तरह सभी तैयार हो जायँ तो सहज ही क्षत्रिय-धर्म की रक्षा हो जायगी । लेकिन यदि 'क्षत्रिय धर्म कैसे टिके ?' इसका अर्थ यह सब हो कि 'क्षत्रियों को नौकरी कैसे मिले, उनका महत्त्व कैसे बढ़े' तो आप ये प्रश्न मुझसे नहीं, दूसरों से पूछ सकते हैं ।

पक्षातीत रहने में ही पूरा काम सम्भव

२. प्रश्न : क्या क्षत्रिय चुनाव में मतदान करें ?

उत्तर : क्षत्रिय हो या ब्राह्मण, मतदान का अधिकार तो सभी को है । फिर भी शान्ति-सैनिक इस झमेले से मुक्त रहें । यदि हम सबके सेवक बनना चाहते हैं तो किसी एक दल के सेवक नहीं रह सकते । दंगा होने पर लोगों को यह विश्वास होना चाहिए कि यह व्यक्ति पक्षपात-रहित है । शान्ति-सैनिक पक्षमुक्त रहने पर ही अपना पूरा काम कर सकता है । नहीं तो समय पर मर-मिटना पड़े तो वह मर सकता है, लेकिन लोगों को बचा नहीं सकता । आज देश में पक्षमुक्त समाज की नितान्त आवश्यकता है, जो प्रेम-भावना के बिना बन नहीं सकता । जो चुनाव में खड़े न होकर समाज की सेवा करे और मानव-मानव के बीच भेदभाव न रखे, वही 'पक्षातीत' कहलाता है ।

विश्वयुद्ध की चिन्ता ही न करें

३. प्रश्न : दूसरे देश आक्रमण कर दें तो क्या होगा ?

उत्तर : आज यह सवाल खड़ा ही नहीं हो सकता । ऊपर से कैसा दर्शन होगा, यह तो ऊपर पहुँचने पर ही ध्यान में आ सकता है, नीचे से नहीं । एक बार देश के अन्दर ताकत पैदा हो जाय, तभी इसका पता चलेगा । आज तो हमें रक्षा के लिए पुलिस और सेना बुलानी पड़ती है और गोलीबार तक करना पड़ता है । यदि शान्ति-सेना से देश की आन्तरिक रक्षा के लिए सेना की जरूरत न पड़े तो देश में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जायगी । फलतः सशस्त्र सेना कम होगी और उसका असर दुनिया पर भी होगा । आज पाकिस्तान तब तक हमपर आक्रमण नहीं कर सकता, जब तक कि अमेरिका उसके इस काम में अनुकूल नहीं होता । फिर यदि अमेरिका इसमें पड़ेगा तो वह विश्वयुद्ध ही हो जायगा, जिसमें हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों नष्ट हो जायँगे । विश्वयुद्ध कोई शाक-भाजी बघारने की बात नहीं, उससे तो सारी दुनिया में क्षोभ व्याप्त हो जाता है । विश्वयुद्ध भूकम्प जैसी आधिदैविक घटना है । बताइये, आप भूकम्प के लिए कौन-सी तैयारी कर रखते हैं ? उस समय तो सब मिलकर केवल प्रार्थना ही कर सकते हैं । अतः हमें विश्वयुद्ध की कोई चिंता ही न करनी चाहिए । इस तरह पाकिस्तान के आक्रमण का कोई भय ही नहीं है ।

आज पाकिस्तानी सीमाओं पर जो हमले होते रहते हैं, जैसा कि हम अखबारों में पढ़ते हैं, वह तो पड़ोस के छोटे-छोटे गाँवों की आपसी तनातनी ही है । ऐसे झगड़े तो एक राष्ट्र के बीच भी चलते रहते हैं । यदि ऐसा ही हो तो शान्ति-सेना भी वहाँ जाकर प्रयोग कर सकती है । लेकिन एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करता है तो वहाँ शान्ति-सेना नहीं चल सकती न अशान्ति-सेना ही चल सकती है । हम प्रतिवर्ष ३०० करोड़ खर्च कर इतनी अधिक सशस्त्र सेना खड़ी करते हैं, पर अमेरिका में तो सेना पर इतना खर्च रोज होता है । फिर हमारी सशस्त्र सेना उसके सामने क्या कर सकती है ?

इसलिए आवश्यक है कि आज शासन चलानेवालों के दिमाग बदले जायँ। इसके लिए क्या किया जाय, इसपर सोचना चाहिए। यदि हम यह सिद्ध कर सकें कि आन्तरिक शान्ति के लिए सेना की जरूरत नहीं है तो उससे देश में शान्ति की शक्ति पैदा होगी और दुनिया को नयी राह मिलेगी। भूदान और ग्रामदान से दुनिया को नयी राह मिल रही है। प्रेमपूर्वक अपनी जमीन का हिस्सा देकर परस्पर सहकार के मार्ग से समस्या हल करने की कोशिश भारत कर रहा है, यह देखने के लिए विदेशी लोग यहाँ आ रहे हैं और उनपर अच्छा असर हो रहा है। लेकिन यदि यहाँ शान्ति-सेना की स्थापना हो और उसका दुनिया पर असर हो तो दुनिया के दिमागों का स्क्रू हाथ में आ जायगा। फिर एक स्क्रू घुमा दिया जाय तो इन बड़े-बड़े बमों का बनना भी बन्द हो जायगा। अतः पहले हिन्दुस्तान की अन्दर की हवा ही सुधारने का यत्न किया जाय। उसीसे सब कुछ बन सकता है। अखबारों में जो बड़े-बड़े शीर्षकों में छपा करता है कि 'हिन्दुस्तान के अमुक-अमुक गाँवों पर पाकिस्तान ने हमले किये', उसकी कुछ भी परवाह करने की जरूरत नहीं है। ऐसा कुछ हो ही नहीं सकता। होगा तो विश्व-युद्ध ही होगा और उसे रोकने का काम यदि कोई कर सकता है तो वह शान्ति-सेना ही कर सकती है। ●●●

प्रार्थना-प्रवचन

वनेड़ा (भीलवाड़ा) १४-२-'५९

सभी राजा लोग शान्ति-सैनिक बनें

आज का यह सुन्दर स्थान और सुन्दर दृश्य देख बड़ी प्रसन्नता हो रही है। यह बहुत पुराना स्थान है, मकान भी पुराने दीख रहे हैं। पुराने स्थान के लोग अनुभवी होते हैं। वे कोई भी गलत काम नहीं करते। हमारे गाँव अधिकतर पुराने हैं। बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि सारे शहर तो नये ही हैं। मेरा खयाल है कि हिन्दुस्तान के पाँच लाख गाँवों में कम-से-कम हजार, डेढ़ हजार गाँव तो पुराने होंगे ही।

भारतीय किसानों का आदर्श

गाँवों की जनता पढ़ी-लिखी कम, पर समझदार अधिक होती है। वह सीधी-सीधी बात झट समझ जाती है। सर्वोदय की बात तुरत उसके ध्यान में आ जाती है। वह समझ जाती है कि 'बाबा हमें धर्म सिखाना चाहता है। पहले धर्म की कल्पना थी, बीच के जमाने में उसका लोप हो गया। बाबा फिर से उसे जगा रहा है। वह कहता है कि समाज के वास्ते कुछ दो।' शहरवाले कहते हैं कि हमने सरकार को टैक्स तो दे दिया, अब फिर देने की क्या बात है? पर गाँववाले ऐसा नहीं करते। जबरदस्ती से टैक्स देना अलग बात है और प्रेम-पूर्वक कुछ देना अलग। खुशी से देने की बात धर्म की बात है, देहातवाले यह खूब समझते हैं। शहर में पचासों लोग मुझसे तरह-तरह की शंकाएँ पूछते रहते हैं, पर देहात में शंका करने-वाले मिलते ही नहीं। जहाँ जाता हूँ, फौरन लोग समझ जाते और उसका पालन करने लगते हैं।

घर-घर सर्वोदय-पात्र रखें

हिन्दुस्तान का किसान 'देने का विचार' भलीभाँति समझता है। भोर ही भोर खेत पर चिड़िया आकर खाती हैं तो वह उन्हें उड़ाता नहीं, खाने देता है। क्योंकि वह मानता है कि 'फसल पर पक्षियों का भी हक है। समाज की माँग पूरी करके ही खाना चाहिए।' यही हिन्दुस्तान की आदर्श परम्परा है। हम भी शान्ति के लिए ही सर्वोदय-पात्र की स्थापना चाहते हैं। मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि यदि अपनी-अपनी संस्थाओं और आश्रमों में कैदी बनकर बैठे हुए लोग उन गुफाओं से बाहर निकलें और जनता के बीच आकर माँग करें तो उनकी माँग पर कुल-की-कुल जनता अपने घरों में सर्वोदय-पात्र रखेगी।

राजाओं के लिए विशुद्ध सेवा का सुअवसर

आज का गाँव एक छोटी-सी राजधानी है। राजा साहब के मकान में ही हम ठहरे हैं। उन्होंने पहले कुछ भूमिदान दिया और आज भी दे रहे हैं। यद्यपि उनका राज्य गया, फिर भी उन्होंने कुछ खोया नहीं है। यदि वे अब सेवा का राज्य शुरू कर दें तो जितना आदर और प्रेम पहले जनता से उनको मिलता था, उससे दस गुना आदर और प्रेम मिलेगा। उस समय तो वे जनता की सेवा करते ही थे, पर उसके साथ सत्ता भी थी, राज्य भी था। राज्य चलाने में कुछ-न-कुछ गलती या अन्याय हो ही जाता है। न चाहते हुए भी किसी-को दुःख पहुँच ही जाता है। इसीलिए शास्त्रों में कहा है: 'राज्यान्ते नरकप्राप्तिः'। किंतु सत्ता मिट जाने से उनको अब नरक-प्राप्ति का भय ही न रहा। सेवा कर विशुद्ध पुण्य ही पाने का अवसर है। इसे भगवान की कृपा ही समझनी चाहिए।

अवश्य ही राजाओं ने अपने राज्य शान्ति से सरकार को सौंपकर बड़ी बुद्धिमानी दिखाई है। अगर वे उस समय चाहते तो अड़ंगा भी डाल सकते थे, यद्यपि बाद में उसका कोई मूल्य न ठहरता। किन्तु उन्होंने बड़ी समझदारी से काम किया। देखा कि सारा भारत एक हो रहा है और जमाना बदल रहा है, इसलिए सबको एक हो जाना चाहिए। उनकी इस समझ-दारी का बखान अवश्य किया जाना चाहिए। उनके राज्य छीने नहीं गये, बल्कि उन्होंने खुशी से उनका दान कर दिया, यह उनकी सूर्य-चन्द्रवंशीय परंपरा के अनुरूप ही कहा जायगा। इस तरह उन्होंने त्याग तो किया, पर उसके बाद सेवा भी करनी होगी। तभी उस त्याग पर चाँद लग जायँगे। खेत में घास-पात की सफाई, जुताई में काफी श्रम और त्याग करें तो वह ठीक ही है, किन्तु उतने से फसल पैदा नहीं हो सकती। उसके बाद बीज भी बोना पड़ता है। इसी तरह त्याग के बाद सेवा करने पर ही वह सफल हो उठता है, निखर उठता है।

शान्ति-सैनिक होने में ही स्वरूप की रक्षा

इसलिए मैं चाहता हूँ कि सभी राजा लोग शान्ति-सैनिक बन जायँ और शान्ति-सैनिक के नाते सेवा करने लग जायँ। वे किसी पक्ष में शामिल न हों। उन्हें चुनाव में भी खड़े नहीं होना चाहिए। मान लीजिये, वे अपने ही पुराने राज्य से खड़े होते हैं और पाँच लाख मतदाताओं के बीच बहुमत से चुन भी आते हैं, किन्तु उनके लिए यह गौरव की बात नहीं। जब वे राजा थे, तब सारी प्रजा के सेवक थे। किन्तु इस तरह तो उन्हें कुछ लोगों के विरोध में भी खड़ा होना पड़ेगा और कुछ ही लोगों के सेवक बनेंगे। इसलिए बहुत अच्छा हो, यदि वे चुनाव में भाग ही न लें। यदि खड़े भी हों तो इसी शर्त पर कि हमें सर्वानुमति से चुना जाय। सारांश, राजाओं को समझना चाहिए कि वे सब लोगों के सेवक हैं, किसी एक पक्ष के नहीं। कालिदास

ने राजा की बड़ी ही सुन्दर व्याख्या की है : 'राजा प्रकृतिरञ्जनात्'। याने प्रजा का रंजन करनेवाला, उसे रिझानेवाला ही राजा होता है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि ये राजा लोग लोक-सेवक और शान्ति-सैनिक बन जायँ, इसीमें उनकी स्वरूप-रक्षा है और वे बहुत कुछ कर सकते हैं।

पुण्य का भी अहंकार ठीक नहीं

आज मेरे एक मित्र कह रहे थे कि भूदान में आज तक ६ लाख लोगों ने दान दिया तो वे ही लोग सिपाही बनकर यह काम क्यों नहीं करते? उन्होंने दान दिया तो उनका कर्तव्य है कि वे दूसरों से भी दान दिलायें। वे खुद दान देकर चुप क्यों रह गये? वस्तुतः दान देनेवालों को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वे दूसरों से भी दिलवायें। सभी लोग देने लग जायँ तो आपको दाता का अभिमान भी न रहेगा, जो दान का महत्त्व ही नष्ट कर देता है। 'सबने खाया और मैंने भी खाया' तो इसमें कोई अहंकार नहीं रह जाता। लेकिन 'दूसरों ने नहीं खाया और मैंने खाया' तो इसमें अहंकार खड़ा हो जाता है। इस बारे में हमें मुसलमानों से शिक्षा लेनी चाहिए। चार मुसलमान अगर एक साथ यात्रा करते हों तो वे एक साथ बैठकर ही नमाज पढ़ेंगे, अकेले नहीं। इस तरह अगर वे देकर सबसे दिलवायें तो उनमें कुछ भी अहंकार नहीं रहेगा। यदि अहंकार क्षीण करना है तो पुण्य का भार सिर पर उठाना ठीक नहीं। उसके लिए सरल युक्ति यही है कि वह पुण्य-कार्य हम अकेले न करें, सबको साथ लेकर ही करें। फिर 'मैंने किया' ऐसा नहीं रहेगा, 'हमने किया' ऐसा ही होगा।

'मैंने अपने घर में सर्वोदय-पात्र रखा है', ऐसा न बोलें और 'हमारे गाँव में सब लोगों ने सर्वोदय-पात्र रखा' ऐसा कहें तो अभिमान सहज ही नष्ट हो जायगा। हमारे यहाँ बड़े-बड़े योगी गुफाओं में जाकर तपस्या करते और परमेश्वर से सीधा नाता जोड़कर उसके पास पहुँच जाते थे। किन्तु देखा जाय तो अपने ही मुक्ति की कामना करनेवाले ये बड़े-बड़े मुनि भी स्वार्थी ही कहे जायँगे! कारण, ये जंगल में जाकर साधना कर, अकेले ही भगवान से संबंध स्थापित करते थे, दूसरों की कुछ भी परवाह नहीं करते। इस तरह तो मुक्ति भी स्वार्थ बन जाती है। जैसा 'मेरा भोग' स्वार्थ है, वैसे ही 'मेरा पुण्य', 'मेरी मुक्ति' भी स्वार्थ है। मैं इस तरह मुक्त होना नहीं चाहता। सबको लेकर ही मुक्त होना चाहता हूँ।

गांधीजी का उदाहरण

गांधीजी को अंतिम दिनों में किसीने पत्र लिखकर सलाह दी थी कि 'आपने हमारी बहुत सेवा की; मेहनत भी बहुत की, किन्तु अब आपकी अक्ल ठीक काम नहीं दे रही है। इसलिए यदि आप हमें कायम रखना चाहते हैं तो कृपा कर हमारे पीछे मत पड़िये। हिमालय में जाकर तपस्या कीजिये।' गांधीजी ने अपने प्रार्थना-प्रवचन में इस पत्र का उल्लेख करते हुए जवाब दिया कि 'मैं तो आप लोगों का एक तुच्छ सेवक हूँ। अगर आप लोग हिमालय चलें तो मैं भी आपके पीछे-पीछे वहाँ जरूर आऊँगा'। इसके आगे वे यह भी कह सकते थे कि 'अगर आप सब लोग नरक में जायँ तो मैं स्वर्ग जाना पसंद नहीं करूँगा। आपके पीछे-पीछे नरक में भी आ पहुँचूँगा।' लोगों में कुछ पाप या दुःख देख गांधीजी बहुत बेचैन हो जाते थे। उनकी यह वेदना अपने जीवन के लिए नहीं थी। अपने जीवन में तो वे मस्त ही थे। रात में भगवान का नाम लेकर निश्चित सो जाते थे। जिस किसी भी क्षण उनके पास पहुँचने पर, बड़ी-से-बड़ी आपत्ति और वेदना में रहते हुए भी, उन्हें हँसने में देर नहीं लगती थी। खिल-खिलाकर हँस पड़ते थे। इस तरह स्पष्ट है कि उनकी वेदना नहीं, अपनी गलतियों की वेदना लोगों के पापों की वेदना थी। लोगों के पापों से वे अपने को पापी मानते थे। यह बहुत बड़ी बात है। नहीं तो आये दिन लोगों के मुँह से सुना ही जाता है कि 'मैं पुण्यात्मा और तुम पापी'। किन्तु बापू की बात ऐसी नहीं थी। नरसी मेहता के बारे में भी ऐसी ही प्रसिद्धि है। उन्होंने कहा है 'बापजी पाप में कवण कीधा हशे। नाम लेता तारूँ निद्रा आवे।' अर्थात् भगवान, मैंने कौन-से पाप किये हैं, जो तुम्हारा नाम लेते समय मुझे नींद आ रही है। वास्तव में नींद उन्हें नहीं, उनके श्रोता भक्तजनों को आती थी। किन्तु उनका दोष वे खुद पर मढ़ लेते थे। इसीलिए वे जनता के प्रिय भी हो गये। वैसे ही गांधीजी भी लोगों के पापों से अपने को पापी समझते थे। कोई अगर उनसे कहता कि 'आपमें स्थित-प्रज्ञ के लक्षण प्रकट हुए हैं' तो वे कहते : 'स्थितप्रज्ञ के लक्षणों से मैं बहुत दूर हूँ। मुझे कभी सुख होता है तो कभी दुःख। लोग मुझपर जो आक्षेप करते हैं, उन्हें खुद मैं ही अपने ऊपर ले लेता हूँ।' इस तरह स्पष्ट है कि वे सिर्फ अपनी ही मुक्ति की इच्छा नहीं करते थे। सब साथ चलें, सबकी मुक्ति हो; सबको आगे रखकर ही मैं उनके पीछे-पीछे चलूँ, यही वे चाहते थे।

सारांश, दाता सामने आयें और दूसरे से दिलवायें तो उनकी जमात बढ़ेगी और अहंकार भी नहीं रहेगा। मैं आशा करता हूँ कि यदि राजाओं की यह सारी जमात भूदान के काम को उठा ले और गाँव-गाँव जाकर लोगों को समझाये तो जनता में खूब जागृति आ सकती है। मेरे जैसा मनुष्य कितने गाँवों में जा सकेगा? आप लोगों ने दान तो दिया, पर उसके बाद आपका यही कर्तव्य है। इसे आप अवश्य पूरा करें।

मैं चाहता हूँ कि इस मेवाड़ के हर गाँव के हर घर में सर्वोदय-पात्र रखे जायँ, गाँव में कोई भी भूमिहीन न रहे, हर गाँव से छठा हिस्सा भूमिदान मिले और ग्रामदान की बुनियाद पर ग्राम-स्वराज्य की स्थापना हो। ●●●

आवश्यक सूचना

अ० भा० सर्वोदय सम्मेलन के कारण आगामी ३ मार्च का अंक बन्द रहेगा। अतएव अगला अंक ५ मार्च को प्रकाशित होगा।

—व्यवस्थापक

अनुक्रम

१. गो-रक्षा का समग्र····	हमीरगढ़	११ फरवरी '५९	पृ० १९३
२. सरकारी तथा गैर····	सतलासण	५ जनवरी '५९	,, १९६
३. शान्ति-सेना ही····	कोवा	२२ दिसम्बर '५९	,, १९७
४. सभी राजा लोग····	वनेड़ा	१४ फरवरी '५९	,, १९९

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित
फोन : १२८५ तार—प्रकाशन, राजघाट, काशी।